जुलाई–सितम्बर, 2026 वर्ष : 27 अंक : 3

हिन्दी जगत

विश्व हिन्दी न्यास का त्रैमासिक प्रकाशन



विश्व हिन्दी न्यास
WORLD HINDI FOUNDATION, INC.

A Tax-Exempt Charitable & Educational Foundation (ID 31-1679275)

Website : www.worldhindifoundation.org

Board of Directors

Executive Director

Dr. Anchala Sobrin
20 Presidential Way, Hopewell Junction, NY 12533
Tel: (845) 226 2542 । Email: hindinyas@gmail.com

Secretary

Mrs. Padmini Prasad
1282 Royal Pointe Lane, Ormond Beach, FL 32174
Tel: (845) 764 1058 । Email: prasad.padmini@gmail.com

Treasurer

Mr. Pradeep Agarwal
25, Oak Tavern Circle, Branchburg NJ 08876
Tel: (646) 472 6320 । Email: pnagarwal@gmail.com

Directors

Dr. Surendra Nath Pandey, GA (706) 610 1601
pandeysn@yahoo.com
Mrs. Seema Khurana, NY (845) 227 8605
seemakhurana1223@gmail.com
Mrs. Sharmishtha Dutta Banerjee NY (845) 764 9014
sduttabanerjee@gmail.com
Mr. Anil Agarwal, NY (718) 271 3129
manishi.anil@gmail.com
Prof. Suresh Rituparna, India (+91) 09810453245
rituparna.suresh@gmail.com
Dr. Shyam Narayan Shukla, CA (510)770-1218
shuklas@comcast.net
Dr. Ila Prasad, TX (832) 446-3677
ila_prasad1@yahoo.com

Chapter Directors

Buffalo: Mrs. Meena Rustgi (716) 632 5768
rustgime@roadrunner.com
California: Mrs. Nirmala Shukla (510) 770 1218
nirmalashukla@comcast.net
Chicago: Mr. Kamal Gupta (847) 612 4244
citkam@gmail.com
New Jersey: Mr. Sharad Agarwal (732) 283 0566
sharad@sntravel.net
New York: Mr. Man Mohan Maheshwari (212) 678 9011
m_wari@yahoo.com

Web Master

Mr. Saugata Banerjee
Email : ronbans@gmail.com

Editor Hindi Jagat & International Co-ordinator

Prof. Suresh Rituparna
221 Prabhavi Apartments, Plot No. 29B,
Sector 10, Dwarka, New Delhi 110075
Tel: 91 11 4558 4374, Mob.: 91 98104 53245
Email: rituparna.suresh@gmail.com

विश्व हिन्दी न्यास की परिकल्पना (Vision)

1. एक ऐसा विश्व जहाँ हिन्दी एक महत्त्वपूर्ण वैश्विक-भाषा के रूप में विकसित हो।
2. एक ऐसी कार्य साधक भाषा बनाने का प्रयास जिसका प्रयोग सरकारी एवं निजी संस्थानों के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ में भी हो सके।

विश्व हिन्दी न्यास का उद्देश्य (Mission)

1. हिन्दी भाषा के प्रति वैश्विक जागृति लाने का प्रयास
2. ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में इसके प्रयोग का विस्तार
3. हिन्दी भाषी समुदायों के बीच संस्कृति जन्य ज्ञान पर आधारित मूल्य बोध एवं शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार

विश्व हिन्दी न्यास का लक्ष्य (Goals)

1. न्यास का प्रयास रहेगा कि वह ऐसे व्यक्तियों एवं संस्थाओं को अपना समर्थन और प्रोत्साहन दे जो हिन्दी भाषा के शिक्षण एवं प्रयोग के क्षेत्र में जागृति फैलाने के कार्य से जुड़ी हुई हैं।
2. दक्षिण एशियाई विद्वानों, लेखकों, कलाकारों एवं विशेषज्ञों के सहयोग से विशिष्ट परियोजनाओं का सूत्रपात करना।
3. एक ऐसे अन्तर्जालिक आभासी मंच का निर्माण करना जिस पर 'ऑनलाइन सेटिंग' के माध्यम से भारतीय सामुदायिक केन्द्रों एवं शिक्षण संस्थाओं तक हिन्दी-शिक्षण-कार्यक्रमों को पहुँचाया जा सके।

न्यास की सदस्यता

विश्व हिन्दी न्यास के उद्देश्य और लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए हमें अनेक सक्रिय सदस्यों की आवश्यकता है। हमारा प्रयास है कि जो भी व्यक्ति न्यास के उद्देश्य, लक्ष्य एवं प्रेरक कार्यों में रूचि रखता है, न्यास का सदस्य बनने के लिए उसका हम सहर्ष स्वागत करते हैं। न्यास का सदस्य बनने के लिए तीन श्रेणियां हैं--

1.	आजीवन सदस्य	(सदस्यता राशि - $400 मात्र)
2.	वार्षिक पारवारिक सदस्य	(सदस्यता राशि - $ 40 मात्र)
3.	व्यक्ति सदस्य	(सदस्यता राशि - $25 मात्र)
4.	छात्र सदस्य	(सदस्यता राशि - $ 10 मात्र)

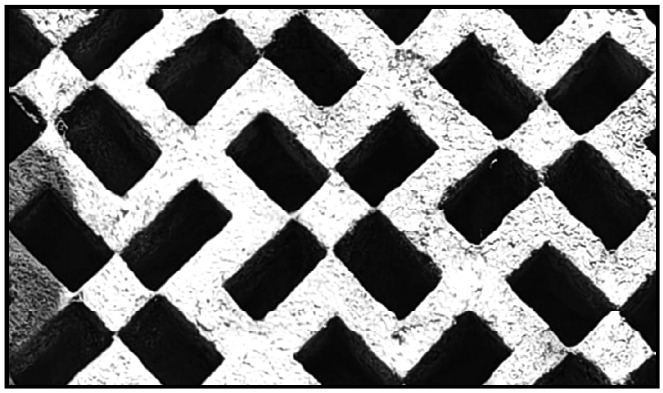
अनुदानदाता सदस्यों के लिए पांच श्रेणियां हैं:-

1.	हिन्दी रत्न	- $20,000 अथवा इससे अधिक
2.	हिन्दी संरक्षक	- $10,000 अथवा इससे अधिक
3.	हिन्दी हितकारी	- $5,000 अथवा इससे अधिक
4.	हिन्दी मित्र	- $3,500 अथवा इससे अधिक
5.	हिन्दी शुभचिन्तक	- $2500 अथवा इससे अधिक

आप किसी भी श्रेणी का चुनाव कर सकते हैं और अनुदान का चैक कोषाध्यक्ष (Treasurer) श्री प्रदीप अग्रवाल को निम्न- लिखित पते पर भेजने की कृपा करें।

25, Oak Tavern Circle, Branchburg, NJ 08876 USA
Tel: (646) 472-6320 Email: pnagarwal@gmail.com

न्यास की वेबसाइट पर जाकर सदस्यता फॉर्म



हिन्दी जगत

ISSN 1543-8651 (USA)

जुलाई-सितम्बर 2026 ● वर्ष : 27 अंक : 3

सम्पादक मंडल

प्रबंध सम्पादक
डॉ. अंचला सोब्रिन
àßmail : hindinyas@gmail.com, Tel : +1(845) 226-2542

सम्पादक
प्रो. सुरेश ऋतुपर्ण
àßmail: rituparna.suresh@gmail.com, Tel : 91-9810453245

●

सह-सम्पादक
इला प्रसाद
Email : ila_prasad1@yahoo.com, Tel : +1(832) 446-3677

निवेदन : कृपया प्रकाशन हेतु अपनी रचनाएँ सम्पादक मंडल के पास भेजें। पत्रिका में व्यक्त विचार स्वतन्त्र रूप से लेखकों के हैं, न्यास का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा प्रकाशित रचनाओं के लिए हम किसी प्रकार का मानदेय देने में असमर्थ हैं।
इस अंक में प्रकाशित रचनाओं के लेखकों के प्रति हम अत्यन्त आभारी हैं।

विश्व हिन्दी न्यास,
World Hindi Foundation
20 Presidential Way Hopewell Junction,
New York, 12533
के लिए
डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण, अन्तर्राष्ट्रीय समन्वय-संयोजक द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।
मुद्रक : विकास कम्प्यूटर एंड प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

अनुक्रम

आपके पत्रों से		2
सम्पादकीय		3
पाँच कविताएँ	—कुँवर नारायण	4
विश्व-पटल पर अमेरिका	—स्नेहलता दीक्षित	5
कुछ दोहे	—विनय मिश्र	6
डोर के दो छोर (कहानी)	—डॉ आरती लोकेश	7
ज़हर (कविता)	—पवन माथुर	12
राष्ट्र के लिए समर्पित दुर्गाबाई देशमुख	—डॉ. विद्या केशव चिटको	13
शुक्रिया (कविता)	—हरभगवान चावला	14
वह भागी थी (कहानी)	—संदीप तोमर	15
स्वतंत्रता (कविता)	—परिचय दास	18
गाते-गाते लोग चिल्लाने लगे हैं	—दुष्यंत कुमार	20
हस्तक्षेप (कविता)	—श्रीकांत वर्मा	21
दो कविताएँ	—पारुल कंदर्प देसाई गुजराती से अनुवाद : कुशल मेहता	22
जीवन (कविता)	—निधि नित्या	22
लौह-द्वार (लघुकथा)	—रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'	23
भाषा एक सेतु है	—सुरेश ऋतुपर्ण	24
अपनी तिर्यक चाल (कविता)	—गौरव	26
दूर पास के दु:ख	—जसवीर त्यागी	27
हिंदी तेरा क्या होगा	—डॉ. अशोक बत्रा	27
अब क्या करेंगे लल्लन गुरु (कहानी)	—महेश शर्मा	28
गढ़ रही है औरत (कविता)	—उर्मिला शुक्ल	31
लाठी मारना और खाना दोनों ही अलौकिक कला है- व्यंग्य	—सुषमा व्यास 'राजनिधि'	32
नादान मछलियाँ (कविता)	—इन्दिरा किसलय	33
हिन्दी वालों में हिन्दी भाव क्यों नहीं पैदा हो पाया	—शम्भुनाथ	33
हिन्दी का दुर्भाग्य	—शरद जोशी	33
गुरु दक्षिणा (कहानी)	—महेन्द्र तिवारी	34
प्यास से तड़पता आदमी (कविता)	—केशव दिव्य	35
प्रणय नगरी माण्डू में आपका स्वागत है	—प्रताप सहगल	36
गाँव की यादें	—श्री कमलेश भारतीय	41
बस्ता (कविता)	—डॉ. ऋतु शर्मा	41
खीर : एक पहेली (कहानी)	—डॉ पद्मजा शर्मा	42
तीन कविताएँ	—प्रो. रणजोध सिंह	43
अकबर इलाहाबादी का हास्य तत्कालीन समय पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी है!	—सुरेन्द्र वर्मा	44
भूल जाते है लड़के (कविता)	—हरदीप सबरवाल	46
ज़रूरतें (कविता)	—विनोद खेतान	46
दो ग़ज़लें	—डॉ. राधिका सिंह	46
आओ, गजानन आओ (व्यंग्य)	—रामस्वरूप दीक्षित	48

Cover Photo Courtesy : J Kastner

'एक कला है कविता पाठ' लेख से संबंधित कुछ विचार हैं।

छंदोबद्ध और मुक्त छंद दोनों में लय की एक व्यवस्था होती है। एक में निश्चित नियम और दूसरे में आन्तरिक लय जिसके कारण कविता कविता कहलाती है और जो उस के पठन पाठन में स्पष्ट झलकती भी है।

एक अन्य महत्वपूर्ण बात पर भी ध्यान जाता है—''बड़ी कविताएं दीर्घ नही लम्बी नहीं...।'' बड़ी कविता से अभिप्राय लेखक का श्रेष्ठ कविता से है। कविता अपने छोटे आकार मे भी ह्रदय को स्पर्श कर सकती है यदि उसमे संवेदनशीलता और गंभीरता का गुण है। चित्रकला और मूर्तिकला के उदाहरण देकर बात को सरलता से समझा दिया गया है। लेखक को साधुवाद।

—सरिता बख्शी

(नई दिल्ली)

यह अंक गागर में सागर है। सभी रचनाएँ पठनीय हैं।

पवन शर्मा की पाँच कविताएँ संवेदनशील मन की उपज हैं। 'बारिश के बाद' में कोमलता, 'माँ के हाथ' में ममता और 'आखिरी चिड़िया' में पर्यावरण की मार्मिक पीड़ा है।

हरदीप सबरवाल की 'युग/युद्ध के बीज' युद्ध और सत्ता पर प्रहार करती हैं। एकलव्य के कटे अंगूठे से आज के द्रोणाचार्यों तक की राजनीति उजागर होती है।

डॉ. अंजना अनिल की 'लड़कियाँ और आकाश' बेटियों को बुलंदी का आह्वान है। अशोक सिंह की ग़ज़ल 'तराना दर्द का' में भीड़ में तन्हा रह जाने की टीस है।

लावण्या शाह की 'तुलसी का बिरवा' परदेस में भी गाँव की महक लिए है, जहाँ तुलसी नारी जीवन का सुंदर रूपक है। सुशांत सुप्रिय की 'कबीर' आज के समय में कबीर को फुटपाथ पर ला खड़ा करती है।

आपके पत्रों से

'अदर मदर' डॉ. शैलजा की कहानी और दोनों यात्रा वृत्तांत विशेष रूप से प्रभावशाली हैं।

कुल मिलाकर अंक संग्रहणीय है। संपादकीय टीम को बधाई।

—डॉ वंदना शर्मा,

नई दिल्ली

त्रैमासिक पत्रिका 'हिंदी जगत' का अप्रैल-जून 2026 का अंक प्राप्त हुआ। पत्रिका के सम्पादक मंडल की जितनी तारीफ की जाए कम है। हर नवीनतम अंक मनोरंजन के साथ-साथ प्रेरणा देने का भी कार्य करता है।

हरदीप सबरवाल, सुशांत सुप्रिय, डॉ. यशोधरा भटनागर की कविताएं, अरुण अर्णव खरे की कहानी 'ईशू, यह दुनिया ऐसी क्यों है?' गौरव पांडे का पुण्य-स्मरण 'हजारी प्रसाद द्विवेदी और 'शान्ति निकेतन', प्रदीप सरदाना और दिनेश लखनपाल के आशा भोंसले पर लिखे गए संस्मरण इस अंक की उपलब्धियां हैं।

विजया सती जी के 'भूटान यात्रा : एलिस इन वंडरलैंड' में भूटान का सुन्दर यात्रा-वृतांत पढ़ने को मिला इसके लिए आभार एवं आशा करती हूँ कि ऐसे लेख आगे भी पढ़ने को मिलते रहेंगे।

साथ ही सुरेष ऋतुपर्ण जी की कविता 'चुप्पी भरी विदाई' एवं चित्र भी दिल को छू जाते हैं।

—सुधा त्रिपाठी

दिल्ली

हिन्दी जगत का अप्रैल जून 2026 का अंक मिला। ये अंक कविता, कहानी, संस्मरण और यात्रा-संस्मरणों से भरपूर है।

आशा भोंसले जी पर दिनेशलखन पाल का आलेख बहुत अच्छा लगा। उन्होंने आशा जी के व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों और उनके जीवन की बारीकियों व संघर्षों का बखूबी चित्रण किया है। विजया सती का यात्रा संस्मरण 'भूटान यात्रा एलिस इन वंडरलैंड' से हमें भूटान की मान्यताओं, पारंपरिक वेशभूशा, व्यवहार और भोजन के बारे में पता चला। भूटान की खूबसूरती, बहते बादलों के बीच बर्फ से ढके कंचनजंघा पर्वत का दर्शन, अनूठे रंग, सौन्दर्य भरे लहलहाते फूल का वर्णन इतना सजीव है कि सब जैसे आँखों के समक्ष प्रस्तुत हो गए हैं।

पवन शर्मा की कविताएँ विशेषकर 'शहर में बची हुई नदी' मन को छू जाती है।

पुन: एक संग्रहणीय अंक के लिए बधाई। विश्वास है कि आगे भी ऐसे अंक पढ़ने मिलेंगे।

—पूनम श्रीवास्तव

फरीदाबाद

हिंदी जगत पत्रिका के आने वाले नए अंक का हमेशा से इंतजार रहता है। जाने-अनजाने लेखकों की सुंदर-सुंदर रचनायें बहुत मन को भाती हैं। हिन्दी जगत के अप्रैल-जून, 2026 के अंक में डॉ. अंजना अनिल की कविताएँ बहुत ही अच्छी लगीं। विशेषकर 'लड़कियाँ और आकाश' जिसमें लड़कियों को प्रोत्साहित किया गया है अपने अधिकारों के लिए। डॉ. यशोधरा भटनागर की 'गौरेया का आर्तनाद' कविता भी काफी भाव-विभोर कर गई। आशा भोंसले हमेशा से मेरी पसंददीदा गायिकाओं में से एक रहीं हैं। इसलिए दिनेश लखनपाल जी का लेख 'आशा भोंसले : एक निरंतर संघर्ष और संभावना' बहुत अच्छा लगा। लेख के माध्यम से उनके जीवन से जुड़े बहुत से अनसुने किस्से मालूम हुए। गौरव पांडे का लेख हजारी प्रसाद द्विवेदी और शांति निकेतन के बारे में भी रोचक जानकारी मिली। अगामी अंक का इंतजार रहेगा।

—वंदना भंडारी

नोएडा

सम्पादकीय

हिन्दी दिवस के अवसर पर अपनी एक पोस्ट में हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार प्रो. शंभुनाथ जी ने एक महत्त्वपूर्ण सवाल उठाया है—हिन्दी वालों में 'हिन्दी भाव' क्यों नहीं पैदा हो पाया? हिन्दी भाव के कई आशय हो सकते हैं। हिन्दी से प्यार, लगाव या गर्वानुभूति, स्वाभिमान या फिर उसके भाषायी एवं सांस्कृतिक वैभव के साथ जुड़कर अपनी अस्मिता की पहचान। वस्तुत: इन सभी धरातलों पर हिन्दी वाले पिछड़ते रहे हैं।

एक कहावत है—'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत' कहीं-न-कहीं हिन्दी से जुड़े लोग मन ही मन हार मान चुके हैं। अंग्रेजी के मुकाबले अपनी हीनता से ग्रसित हो चुके हैं। वे समझने लगे हैं कि उनका वर्चस्व अंग्रेजी से ही सम्भव है। इसका एक प्रमाण यह है कि आज न जाने कितने हिन्दी के छोटे-मोटे लेखक अपनी रचनाओं का अंग्रेजी में अनुवाद कराने की लालसा पाले हुए हैं। वे यह नहीं जानते कि जब उनकी रचनाओं को हिन्दी में ही पढ़ने वाले नगण्य प्राय: होते जा रहे हैं तो उनकी अनुवादित अंग्रेजी पुस्तक का पाठक कौन होगा? इसके मुकाबले यदि वे अपनी श्रेष्ठ रचनाओं को भारत की प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद करा कर एक बृहत्तर भारतीय पाठक समाज से जुड़ने का उपक्रम करें तो ज्यादा फलप्रद हो सकता है। परायी भूमि से जुड़ी भाषा के मुकाबले हमारी अपनी धरती से जुड़ी भाषाओं से जुड़ने में ज्यादा आसानी है। अपनी भूमि की सुगंध को सभी जानते-पहचानते हैं। आप हिन्दी के होकर भी अखिल भारतीय हो सकते हैं लेकिन अंग्रेजी के अनुवाद आपको कहीं नहीं पहुँचाएँगे।

एक बात और गौर करने की है। भारत में प्रकाशित होने वाली अधिकांश अंग्रेजी पुस्तकों के विषय संस्मरणात्मक, आत्म-कथात्मक तथा राजनैतिक संदर्भ लिए हुए होते हैं और ये पुस्तकें वेस्ट सेलर भी बन रही हैं। अभी हाल में ही श्रीमती सोनिया गांधी की संस्मरणों की अप्रकाशित किताब को लेकर जिस तरह का प्रकाशन जगत में खेल हुआ है, वह इस बात का उदाहरण है कि लोगों का ध्यान अब मौलिक साहित्य से अलग हटकर कुछ सनसनी पैदा करने वाले रहस्योद्घाटनों या फिर राजनैतिक दुरभि सन्धियों, दाँव-पेचों से जुड़ी चटखारे वाली पुस्तकों की ओर मुड़ गया है।

पुस्तक चाहे कैसी भी हो, यदि उसमें भाषा और भावों की गहराई और रवानगी नहीं होगी, पठनीयता का गुण नहीं होगा तो वह पाठक के मन को नहीं छुयेंगी। दुर्भाग्य से जब से हिन्दी साहित्य जगत में वाद-सापेक्षता और विचारधारा के प्रति आग्रह बढ़ता गया, उसी क्रम में उसकी पठनीयता पर ग्रहण लगना शुरू हो गया। भावनाओं में जो रसात्मक प्रवाह होता है, वह विचारों में नहीं होता है। जीवन-जगत का व्यवहार भावनाओं से संचालित होता है, मात्र तर्क और बुद्धि से नहीं। जो साहित्य हमारी भावनाओं को झंकृत करने की शक्ति नहीं रखता है, वह कालजयी नहीं बन पाता है।

मैं जब अपनी किशोरावस्था को याद करता हूँ तो याद आता है कि हम लोग जहाँ एक ओर गुलशन नन्दा, प्रेम वाजपेयी, कुशवाहा कांत के सामाजिक उपन्यास पढ़ते थे, जहाँ इब्ने शफी, ओमप्रकाश के जासूसी उपन्यास पढ़ते थे, वहीं प्रेमचन्द, शरतचन्द्र, अमृतलाल नागर, अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा, धर्मवीर भारती जैसे रचनाकारों को भी खूब पढ़ते थे। दोनों में ही निहित पठनीयता का गुण हमें आकर्षित करता था और आज भी करता है तथा मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यह आगे भी करता रहेगा।

मैं एक बार पुन: प्रो. शंभुनाथ जी की बात की ओर लौटता हूँ। हमारे भाषायी संस्कार हमारे अस्तित्व के नियामक होते हैं। भाषा ही हमारे होने को चरितार्थ करती है। लेकिन जब भाषा हमारी रोजी-रोटी से जुड़ जाती है तो उसके सन्दर्भ बदल जाते हैं। हमारे नीति-निर्धारकों ने जब से 'हिन्दी अफसरों' का एक वर्ग तैयार कर दिया तब से सरकार में हिन्दी का काम मात्र अनुवाद से जुड़कर रह गया है। सारे प्रस्ताव, संकल्पनाएँ या निर्णय पहले अंग्रेजीदां अफसरों के द्वारा अंग्रेजी में तैयार किए जाते हैं और फिर उन्हें राजभाषा अधिनियम की आड़ में अनुवादित कराकर राजकाज चलाया जाता है। हिन्दी अफसर की नौकरी उसके 'अंग्रेजीदां बॉस' के इर्द-गिर्द घूमती है। वह स्वतंत्र रूप से कुछ भी नहीं कर पाता है। फलत: हिन्दी भाषा के सौन्दर्य से भी उसका कोई सरोकार नहीं रह जाता है। घिसी-पिटी ढर्रे पर चलती अंग्रेजी और हिन्दी के सहारे उसका जीवन कट जाता है। ऐसी परिस्थिति में उसमें 'हिन्दी भाव' यानि हिन्दी भाषा के सौन्दर्य से लगाव कैसे पैदा होगा? उसका सारा जीवन पदोन्नति की लड़ाई में निकल जाता है। जब सारा सामाजिक ताना-बाना रोजी-रोटी के संघर्ष में फँसा हो तो आत्मिक परिष्कार का अवसर कब आएगा?

अपनी भाषा से प्यार तभी सम्भव होगा जब हम उसके सौन्दर्य से, उसकी सांस्कृतिक भव्यता से, उसकी समृद्ध परम्परा से जुड़कर आत्म-तोष पाएँगे, जिसके सहारे हम अपने जीवन के कष्टों से, परेशानियों से लड़ने की ताकत पाएँगे और जो हमें अपने व्यक्तित्व का परिष्कार करने में समर्थ बनाएगी, तभी हममें अपनी भाषा के प्रति सम्मान की भावना पैदा होगी।



पाँच कविताएँ

❑ कुँवर नारायण

बारिश में भीगने से पहले

वह मुझे
मेरी किसी कविता में नहीं
अपनी कहानी में मिली–

वो भी शुरू में नहीं,
एक औसत पारिवारिक कहानी के
बीच में कहीं...अकस्मात्...

तब तक आधी से ज्यादा
उसकी सुंदरता खत्म हो चुकी थी
और उसका अधेड़ जीवन
जमीन जायदाद की तरह पंजीकृत हो चुका था
उसके पति और बच्चों के नाम।

हम दोनों हाथ में हाथ डाले
एक घुमावदार पहाड़ी ढलान से
नीचे उतर रहे थे

बरसने को उतावले घने काले बादलों से
ढक गई थीं- शिखर से आकाश तक–
उड़ान की हदें

बारिश में भीगने से पहले
उसे घर लौटने की जल्दी थी।

असमंजस

हो सकता है यह आज का नहीं
मुझसे बहुत पहले का कोई समय हो

और जहाँ हमें पहुँचना है कल
वहाँ छोटे–छोटे बच्चे
उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हों
कि देखें उनके लिए
क्या लेकर आता है मेरा युग

एक हाथ में लिए आज का अख़बार
दूसरे में कविताएँ
असमंजस में हूँ
कि पहले उन्हें ख़बरें सुनाऊँ
या कविताएँ...

प्यार की भाषाएँ

मैंने कई भाषाओं में प्यार किया है

पहला प्यार
ममत्व की तुतलाती मातृभाषा में
कुछ ही वर्ष रही वह जीवन में

दूसरा प्यार
बहन की कोमल छाया में
एक सेनेटोरियम की उदासी तक

फिर पर्दे के दूसरी तरफ़
खिली धूप में खिलता गुलाब
बेचैन शब्द
जिन्हें ओठों पर लाना भी गुनाह था

धीरे–धीरे जाना
प्यार की और भी भाषाएँ हैं दुनिया में
देशी–विदेशी

और विश्वास किया कि प्यार की भाषा
सब जगह एक ही है
लेकिन जल्दी ही जाना
कि वर्जनाओं की भाषा भी एक ही है

एक से घरों में रहते हैं
तरह–तरह के लोग
जिनसे बनते हैं
दूरियों के भूगोल
अगर प्यार
भूली बिसरी यादों की
ऐसी भाषा में जिसमें शब्द नहीं होते
केवल कुछ अधमिटे अक्षर
कुछ अस्फुट ध्वनियाँ भर बचती हैं
जिन्हें किसी तरह जोड़कर
हम बनाते हैं
प्यार की भाषा

क्या फ़र्क पड़ता है

फिर एक हादसा
क्यों हुआ? कहाँ हुआ?
क्या फ़र्क़ पड़ता कि कहाँ हुआ

पचास बेगुनाह मारे गए
सौ से अधिक घायल हुए
घर जलाए गए
स्त्रियाँ बेइज़्ज़त की गईं

शाबाश दिलेरी
हम प्रभावित हुए तुम्हारी कामयाबी से!

सब पूछते कि तुम कौन हो
तो तुम अँधेरे में छिप जाते।

तुम जो बेदर्दी से हत्याएँ कर सकते हो
क्या किसी का दिल भी जीत सकते हो?

अगर 'हाँ', तो तुम हत्यारे नहीं हो सकते
अगर 'नहीं', तो तुम आदमी नहीं हो सकते।

कौन हो तुम? सोच कर बताओ
अगर सोच सकते हो, इतनी आसान भाषा में
कि दम तोड़ता एक बच्चा भी समझ सके
तुम्हारी बहादुरी
और अपनी क़ुर्बानी का मतलब।

मामूली ज़िंदगी जीते हुए

जानता हूँ कि मैं
दुनिया को बदल नहीं सकता,
न लड़ कर
उससे जीत ही सकता हूँ

हाँ लड़ते–लड़ते शहीद हो सकता हूँ
और उससे आगे
एक शहीद का मकबरा
या एक अदाकार की तरह मशहूर

लेकिन शहीद होना
एक बिलकुल फ़र्क़ तरह का मामला है

बिलकुल मामूली ज़िंदगी जीते हुए भी
लोग चुपचाप शहीद होते देखे गए हैं। ❑

विश्व-पटल पर अमेरिका

◻ स्नेहलता दीक्षित

इस वर्ष अमेरिका अपनी स्वतंत्रता का ढाई सौ वाँ साल मना रहा है, और यह आज पूरे विश्व में एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में अपनी स्थिति बनाये हुए है। लेकिन इसे इस स्थिति तक पहुँचने में बहुत संघर्ष करना पड़ा तब जाकर एक मज़बूत और शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभर कर आया।

संघर्ष आज भी जारी है चाहे वह भीतरी हो या बाहरी। चलिये जानते हैं इसके विकास की यात्रा, जिसे हम ढाई सौ साल पहले से ही आरंभ करते हैं।

सर्व प्रथम हम देखते हैं कि अमेरिका में जनता की जो आबादी थी वह ब्रिटिश कॉलोनियाँ कहलाती थी। यह संख्या में तेरह थीं। अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में इन कॉलोनियों में ब्रिटेन की दमनकारी नीतियाँ आरंभ हो गयी थीं। इनमें प्रमुख था बिना प्रतिनिधित्व के टैक्स देना। इसके विरुद्ध जनता में असंतोष पैदा हो गया। सत्तरह सौ पचहत्तर में इन कॉलोनियों ने सशस्त्र विद्रोह शुरू कर दिया। जार्ज वाशिंगटन के नेतृत्व में सैन्य प्रयास आरंभ हुआ और विद्रोह को समाप्त कर देश को स्वतंत्र कराया। सत्तरह सौ छियत्तर में स्वतंत्रता की घोषणा की, और एक घोषणा पत्र लिखा गया, जिसे थॉमस जेफरसन ने लिखा था। इसमें जीवन, स्वतंत्रता और ख़ुशी की खोज व अधिकारों के बारे में लिखा गया,और यही स्वतंत्र अमेरिका की घोषणा थी। इन्हीं सब घोषणाओं के तहत एक नये अमेरिकी राष्ट्र का उदय हुआ।

स्वतंत्रता मिलने के बाद देश चलाने के लिए सबसे पहले कुछ नियम बनाए गए जिन्हें 'आर्टीकल्स ऑफ कंफेडरेशन' का नाम दिया गया, लेकिन ये नियम केन्द्र सरकार को कमज़ोर बनाते थे। इस समस्या को हल करने के लिए सत्तरह सौ सत्तासी में फ़िलेडेल्फ़िया में एक प्रतिनिधि मंडल बना। यहाँ एक सम्मेलन हुआ जिसमें प्रतिनिधियों ने एक संविधान लिखा, इसे लिखने वालों में जेम्स मैडिसन प्रमुख व्यक्ति थे। इन्हें संविधान का जनक भी माना जाता है। इनके साथ अलेक्ज़ेंडर हैमिल्टन और बेंजामिन फ्रैंकलिन जैसे विद्वान भी थे जिन्होंने संविधान लेखन में प्रमुख भूमिका निभायी थी।

इस संविधान में शक्तियों का संतुलन बनाए रखने के लिये अलग-अलग शाखाओं, चेक और बैलेंस की प्रणाली, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकारों की रक्षा के 'बिल ऑफ राइट्स' आदि क़ानून भी लिखे गये। अब अमेरिका पूर्ण स्वतंत्र और विकसित राष्ट्र बन गया था। अब इसका विस्तार पश्चिमी क्षेत्रों तक बढ़ गया था जैसे लुइसियाना की ख़रीद और 'मैनिफ़ेस्ट डेस्टिनेशन' जैसी विचारधाराओं के कारण लोगों का पश्चिम की ओर जाने के लिए प्रेरित किया। थामस जेफरसन और लुईस तथा क्लार्क जैसे खोजकर्ताओं ने इस तरफ़ की यात्राओं की अगुवाई की। इनकी अगुवाई में देश की सीमाएं पैसिफिक महासागर तक पहुँच गई। इस विस्तार में राष्ट्रपति जेम्स के पोल्क ने बड़ी भूमिका निभाई थी। लेकिन इस विस्तार ने उत्तर और दक्षिण के बीच दास प्रथा के मुद्दे पर गहरा तनाव पैदा कर दिया जो अठारह सौ इकसठ में गृहयुद्ध में बदल गया। इसमें ग़ुलामी और राज्यों के अधिकारों के विषय भी शामिल थे। यह गृह युद्ध अठारहसौ पैंसठ में समाप्त हुआ, इसमें संघीय सेनाओं ने जीत हासिल की। इस युद्ध में राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने संघटकों को एक जुट रखा और ग़ुलामी की प्रथा को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया।

गृह युद्ध के बाद अमेरिका में अठारहवीं सदी के अंत में औद्योगिक क्रांति की शुरुआत हुई जिसनें अमेरिका के इतिहास का स्वरूप पूरी तरह बदल दिया। गृहयुद्ध के बाद देश में औद्योगिकीकरण का दौर शुरू हुआ, जिसमें कपड़ा मिलों की स्थापना से गति मिली। आगे चलकर एंड्रयू कार्नेगी आदि ने इस्पात का उद्योग तो, रॉकफेलर जैसे उद्योगपतियों ने तेल उद्योग को आगे बढ़ाया। इसी दौरान रेलवे और टैलीग्राफ के विस्तार ने दूर दराज़ के इलाक़ों को एक दूसरे से जोड़े रखा इससे एक विशाल राष्ट्रीय बाज़ार तैयार हुआ। स्टील, तेल, और अन्य उत्पादन क्षेत्रों की तरक्की ने अमेरिका को आर्थिक रूप से दुनिया का सबसे मज़बूत राष्ट्र बना दिया। एंड्रयू कार्नेगी और जॉन रॉकफेलर जैसे उद्योगपतियों ने इन उद्योगों पर अपना वर्चस्व स्थापित किया और अपनी कंपनियों के माध्यम से नई तकनीक और व्यावसायिक प्रथाओं को जन्म दिया। इस तरह से इन्होंने देश के औद्योगिकरण को नई ऊंचाइयों तक पहुंचाया और वैश्विक मंच पर अमेरिका को सर्वोच्च पद पर पहुँचा दिया।

विश्व मंच पर अमेरिका का उदय तब हुआ जब उसने उन्नीसवीं सदी के अंत में स्पेन के साथ युद्ध किया व बाद में फ़िलिपींस और प्यूर्टोरिको जैसे विदेशी उपनिवेश हासिल किए। प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत आष्ट्रेलिया के राजकुमार की हत्या और गुटों के बीच संधियों के कारण हुई। जर्मनी द्वारा अमेरिकी जहाज़ों को डुबाने और जिमरमैन टेलीग्राम की वजह से अमेरिका मित्रराष्ट्रों के साथ इस युद्ध में शामिल हो गया। इस समय अमेरिका में वुड्रो विल्सन राष्ट्रपति थे। इसके बाद द्वितीय विश्वयुद्ध में पर्ल हार्बर पर हुये हमले ने अमेरिका को युद्ध में कूदने पर मजबूर कर दिया। इस युद्ध में अमेरिका की विजय ने उसे दुनिया की महा शक्तियों में खड़ा कर दिया।

इस युद्ध के बाद सोवियत संघ के साथ अमेरिका का वैचारिक टकराव शुरू हो गया जिसे शीतयुद्ध कहा गया। इसमें सीधे तौर पर कोई सैन्य संघर्ष नहीं हुआ,परंतु दोनों देशों के बीच परमाणु हथियारों की होड़, कोरिया और वियतनाम जैसे छद्म युद्ध और अंतरिक्ष

अनुसंधानों में कड़ा मुक़ाबला हुआ। इस बीच अमेरिका में हैरी ट्रूमैन से ले कर जार्ज एट बुक तक कई राष्ट्रपति रहे।

शीत युद्ध की समाप्ति के बाद अमेरिका दुनिया की एकमात्र महाशक्ति बन कर उभरा। सन् दो हज़ार एक (2001)में हुये आतंकवादी हमलों ने देश की सुरक्षा नीति और विदेशी दृष्टिकोण को हमेशा के लिये बदल दिया। जिसके बाद 'आतंकवाद के खिलाफ युद्ध' की शुरुआत हुई अमेरिका को प्रभावित करने वाला वैश्विक वित्तीय संकट (2008) दो हज़ार आठ में सर्वप्राइम मॉर्टगेज संकट के रूप में आया था। इस संकट से बाहर निकलने के लिये, फ़ेडरल रिजर्व ने ब्याज दरें घटाई और तरलता बढ़ाने के उपाय किये। सरकारी बेलआउट पैकेज और बाद में लागू किये गये डोड-फ्रैंक अधिनियम ने भी इसमें बड़ी भूमिका निभाई। इस रिकवरी की अगुवाई करने वालों में राष्ट्रपति बराक ओबामा, फ़ेडरल रिजर्व के चेयरमैन बेन बर्नानके, और ट्रेजरी सेक्रेटरी गैलन शामिल थे।

अमेरिका अपनी जटिल चुनौतियों को नीतिगत पहलों, सार्वजनिक-निजी सहयोग और रणनीतिक कूटनीति के संयोजन से हल करता रहा है।

प्रौद्योगिकी और आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस के मोर्चे पर नेतृत्व, बुनियादी ढाँचे के आधुनिकीकरण और कार्यबल के विकास पर ज़ोर देता है, जिसमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी की नीतियों के निदेशक और मुख्य प्रौद्योगिकी के अधिकारियों जैसी हस्तियां प्राथमिकताओं को आकार देने में मदद कर रहीं हैं। वैश्विक आर्थिक और भू-राजनीतिक चुनौतियों को ऐसी परस्पर जुड़ी रणनीतियों के माध्यम से प्रबंधित किया जाता है जो तकनीकी नेतृत्व को राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता से जोड़ती है।

अमेरिका का भविष्य तकनीकी प्रगति, जनसांख्यिकीय बदलावों और वैश्विक मंच पर अपनी भूमिका को फिर से परिभाषित करने के साथ आगे बढ़ेगा ।जैसे देश ने पिछले दो सौ पचास (250)सालों में कई बदलाव देखे हैं, वैसे ही यह भविष्य में भी अपनी लचीली प्रकृति और नवाचार के दम पर नई चुनौतियों का सामना करेगा। ❐

कुछ दोहे ❑ विनय मिश्र

जब से मेरे गाँव का, मुखिया बना बबूल
काँटों की मर्जी बिना, खिला न कोई फूल

सुख की इच्छा कागजी, कैसे भरे उड़ान
दुख के पेपरवेट से, दबी हुई है जान

सारा पानी पी गया, दानव हुआ विकास
जो नदियों के देश में, भटक रही है प्यास

कहीं बरसने के लिए, देखी कब तारीख
बादल की आवारगी, आँखों ने ली सीख

खुलकर हँसना रह गया, केवल एक प्रतीक
नपी तुली मुस्कान अब, हँसने की तकनीक

एक समन्दर तक चलूँ, पकड़े तेरा हाथ
तू ठहरे तो ऐ नदी, मैं भी हो लूँ साथ

अपने दिल में बाँध लो, बस इतनी सी बात
अपने सूरज के लिए, लड़ना सारी रात

दूर दूर तक रेत का, ओढ़े हुए लिबास
मेरा मन उड़ता, लिए, गौरैया की प्यास

अन्तर में पसरे हुए, अँधियारे को भेद
मुझमें खिलता फूल था, जीवन, लाल- सफेद

जीवन का यह मैच यूँ, लगा सभी को फिक्स
जब-जब आइ बाउंसर, मैंने मारा सिक्स

सच की उजली गेंद का, छूटा कभी न साथ
हॉकी की स्टिक रही, हरदम मेरे हाथ

जीवन के मैदान में, लगी दौड़ यूँ खास
आए राउंड मारकर, दुख फिर मेरे पास

रचना के जनतंत्र में, जिसमें जितना ताप
तय करती है आग ये , कहाँ खड़े हैं आप

इस दुनिया में झूठ का, मिटे एक दिन दंभ
सच की जय हो इसलिए, रण का है आरंभ

कैसे होगा झूठ का, बोलो परदाफाश
सच कहते ही पेड़ पर, टँग जाती है लाश

ऐसी तीखी धूप में, पाने तेरी छाँह
तेरा रस्ता देखते, नैन पसारे बाँह

जहाँ पूछ हो धूप की, उसे पूछता कौन
सदा अनसुना रह गया, परछाईं का मौन

क्यों करते हम राह में, सूरज से तकरार
पेड़ अगर मिलते कहीं, हमको छायादार

जब तक जीवन में यहाँ, बची हुई मुस्कान
खूँटी पर क्यों टाँग दें , जीने के सामान

खामोशी में भी जिया, मैंने इक संवाद
मुझसे बतियाती रही, लौट लौट कर याद

तेरा मेरा है यही, सदियों का इतिहास
पानी तेरा हो गया, मेरे हिस्से प्यास

फूली सरसों पर लिखे, सूरज ललित निबंध
सोने को सौभाग्य से, जैसे मिले सुगंध

तू ऐसे चलता रहा, मुझ में अपने आप
जैसे अपने मौन में, राह चले चुपचाप

कुछ ऐसे है ध्यान में, खुशियों का सामान
जैसे रहता था कभी, पनडब्बे में पान

मेरी किस्मत में कहाँ, लिक्खा है आराम
छुट्टी के दिन ही रहा, सबसे ज्यादा काम

हरदम रहती ज़िन्दगी, अपनों से हैरान
जूता काटे पाँव को, सोना काटे कान

दिन रूठे संवाद के, सूखी मन की झील
दरक रहे विश्वास की, सुनता कौन अपील

मेरे घर के सामने , कुचल गया मासूम
अगले दिन अख़बार से,मुझे हुआ मालूम

❑

फ्लैट नंबर 605, साधु बेला अपार्टमेंट
बनखंडी महादेव के समीप, लेन नंबर 14
रवींद्र पुरी, वाराणसी-221005 उत्तर प्रदेश
मोबाइल-0-9414810083
mishravinay18@gmail.com

कहानी

डोर के दो छोर

❑ डॉ आरती लोकेश

... टूटी डोर के किनारे पर जीवन

सुबह सैर को निकला तो अपने सैल फ़ोन का रेडियो चलाया और कान में ईयरफ़ोन का तार लगा लिया। सुबह संगीत सुनते हुए जॉगिंग करने के लिए पार्क की परिक्रमाएँ करना और वहाँ अपने रिक्त समय को मुसकानों से भरते सेवानिवृत्त बुज़ुर्गों और अतिरिक्त समय के कलश को छलकने की सीमा तक खेलते बच्चों को देखना; ऐसा लगता था कि बस यही सम्पूर्ण शांति की स्थिति है। हृदय की अंदरूनी परतों को मिला निस्सीम सुख मुस्कुराहट बनकर वातावरण और मुख पर तैर गया। ध्यान-योग में कदाचित ही ऐसा अनंत आनंद प्राप्त हो। 'भूले बिसरे गीत' में गीत बजने लगा-

यादों की बारात निकली है,
आ दिल के द्वारे, संग हमारे....

मैं गीत में ऐसा डूबा कि सच में यादों की बारात निकल पड़ी। भाई-भाई कुंभ के मेले में बिछड़ने के कारण ही दूर-दूर हों, यह आवश्यक नहीं। अनेक बार तन के आस-पास होते हुए भी मन की दूरी मीलों के फ़ासले बना देती है।

बचपन वाला रेडियो जेब में नहीं आ सकता था। आज के माइक्रोवेव अवन के आकार का लकड़ी का डिब्बा जिसमें आगे की ओर रंगीन धागे की क्रोशिया की बुनावट जैसी जाली लगी होती थी, जहाँ शायद स्पीकर होता होगा। स्टेशन बदलने के लिए गोल बटन को बार-बार घुमाकर सुई को स्टेशन की फ्रिक्वेंसी पर स्थिर करना होता था। घर भर में अकेला मैं इस कार्य में निपुण समझा जाता था। स्टेशन की फ्रिक्वेंसी बिगड़ते ही आवाज़ लगाकर माँ मुझे ही पुकारतीं और मैं पलंग के ऊपर चढ़कर अलमारी के ऊपर रखे रेडियो के गोल-गोल कैरम की गोटीनुमा बटन को बड़ी कुशलता और तत्परता से घुमाता। गाने की गुमशुदा आवाज़ फिर साफ़ सुनाई देने लगती और मेरी गर्दन गर्व से अकड़ जाती। बाल-आत्मविश्वास में सौ गुना वृद्धि हो जाती।

रेडियो हरेक के घर में होता भी न था। माँ के विवाह में नानाजी ने दहेज में दिया था तो उनकी शान में चार चाँद लग गए थे। रेडियो सुनने का शौक भी सबसे ज़्यादा मुझे ही था। मैं सुबह उठते ही पलंग से नीचे उतरने से पूर्व ही किनारे पर खड़ा होकर रेडियो चला देता और माँ की आवाज़ सुनाई देती, ''ये लड़का भी न बस... धरती पर पाँव बाद में रखता है, रेडियो के बटन पर हाथ पहले।'' कहकर माँ हँस देतीं। पिताजी को भी कोई ऐतराज़ न था। बस भैया को ही जैसे रेडियो से सख्त नफ़रत थी। उपन्यास पढ़ने के शौकीन भैया अपनी जगह से उठते और झट से रेडियो बंद कर देते। मैं स्नानघर से ही चिल्लाता कि 'किसने बंद किया रेडियो'। एक गुर्राहट के साथ आवाज़ आती, 'मैंने' और खबरदार! जो सुबह-सुबह रेडियो का शोर मचाया तो!' स्नानघर से बाहर आते ही मेरी भैया से जमकर लड़ाई होती। माँ फिर से कुड़कुड़ातीं कि सुबह-सवेरे घर में रामायण का पाठ होने की बजाय महाभारत मची हुई है। मैं भी जिद्दी कम न था। रेडियो पुनः चलाकर ही दम लेता और समाचार और भजन भी ऐसे ध्यानमगन हो सुनने का प्रपंच करता कि जैसे वो मेरे स्कूली पाठ्यक्रम का हिस्सा हों और आज उसकी परीक्षा होनी हो। भैया आँखें तरेरते हुए उठकर दूसरे कमरे में चले जाते।

एक वह लड़ाई थी, जो रोज-रोज की बात थी। उस नोंक-झोंक में भी असीम नेह समाया था। वही झगड़ालू भैया अकसर मेरे स्कूल से लौटने के बाद खबर दिया करते थे कि दिन में तेरा पसंदीदा अमुक गाना आया था, किशोर कुमार की आवाज़ में। और मैं निराश हो हाथ-पैर पटकता कि मेरे सामने क्यों नहीं आया। मुझे अपनी पसंद के गानों के पूरे बोल एक डायरी में लिखने का शौक था। फिर भैया मुझे एक कागज़ पकड़ा देते और भरपूर अहसान जताते हुए कहते कि 'ले, लिख लिया था तेरे लिए साथ-साथ सुनकर। तू पता नहीं गाने के साथ-साथ कैसे पूरे बोल लिख लेता है। मेरे लिए तो पहाड़ चढ़ने जैसा मुश्किल है। देख ले; कहीं से कुछ छूट न गया हो।' मैं गदगद हो भैया के गले में बाँह डालकर लटक जाता। वे भी मुझे घुमाकर कीकली करा देते। यादों की बदली से नम आँखों ने अचानक बूँदों की झड़ी लगा दी और मैं सरपट घर भागा।

समय बदल गया। आज वे भारी-भरकम रेडियो नहीं हैं। रेडियो व रिश्तों; दोनों का वजन कम हो गया है। दोनों ही जेबों में समा गए हैं। एक ही घर में ऊपर नीचे रहते हुए भी जब आमना-सामना होता तब अजनबियों की तरह मुँह फेरकर हम अपने-अपने गंतव्य को निकल पड़ते। जाने कैसी टीस सी उठती जो यह समझाने पर शांत होती कि जब उन्हें ही कोई परवाह, कोई लगाव नहीं रहा तो मैं क्यों कौतूहलता व्यक्त करूँ। भावनाओं का सैलाब मेरी स्वर-रज्जु को आंदोलित करे कि उसके पूर्व ही उसे भीतर गटक लिया। प्रकाश की गति को पछाड़ती जीवन-गति में चार वर्ष पलक झपकते ही बीत गए।

बारहवीं में मेरे फर्स्ट डिवीज़न में पास होने पर भैया ने मुझे ट्रांज़िस्टर लाकर दिया था। बैटरी से चलने वाला यह ट्रांज़िस्टर जोकि रेडियो के आयतन का आठवाँ हिस्सा पड़ता होगा, केवल बड़े घर के लोगों के पास हुआ करता था, जो उसे शान से हाथ में झुलाते हुए सड़क पर टहलने निकला करते थे। मोहल्ले-भर को रोमांचित करता रेडियो अब बिजली के खटके की डोर से कटकर अलग हो चुका था।

आज दफ्तर से आकर खाना खाने बैठा ही था कि आवाज़ सुनाई दी, ''माधो! ओ माधो!''। कानों के पर्दों पर हुई झंकार पर भरोसा न बैठा। हाथ में पकड़ी रोटी की कौर उँगलियों के बीच अटक गई। वह मुँह में जाती तो कानों की शक्ति क्षीण हो जाती। नाम तो मेरा मधुकर शर्मा था। किंतु माँ प्यार से 'माधव' और 'माधो' कहा करती थीं और मेधावी होने के कारण पिताजी भी माधो बुलाया करते थे। नाम तो पुकारने का वही था- 'माधो' मगर भैया मुझे 'मिट्टी का माधो' (अर्थात् बुद्धू) कह-कहकर मुझे चिढ़ाने के लिए माधो बुलाया करते थे। गत चार वर्षों से शब्दों का आदान-प्रदान बंद था। पत्रियों में भी कोई बात न होती थी। बच्चे अवश्य हम लोगों की जानकारी से बाहर आपस में व्हाट्सएप या स्काइप पर बात कर लेते थे।

अत: भैया द्वारा मुझे आवाज लगाने को मात्र वहम या अंतस की ध्वनि समझकर, कानों की लोलकी को ज़ोर से खींचा, स्वयं को संयत किया और खाने में पुन: व्यस्त कर लिया। सामने ही 'टू इन वन' रखा था। अपनी पहली तनख्वाह से मैं भैया के लिए लाया था। भैया प्रतिदिन सुबह पूजा करते थे और अनूप जलोटा के स्वर में अपने प्रिय भजन का ठीक सवा छ: बजे रेडियो पर सुनने का इंतज़ार किया करते थे। 'टू इन वन' के साथ अनूप जलोटा के भजन की कैसेट पाकर वे निहाल हो उठे थे। जब झगड़ा हुआ तो ऐसा कि मेरा उपहार भी मुझे लौटा गए। वह उनकी धरोहर के रूप में मेरे पास संरक्षित है।

''वृन्दा! माधो आया नहीं क्या अभी तक?'' यह वाक्य सुनकर तो पत्नी का हृदय-स्पंदन भी बढ़ चला। तवे पर रोटी जलती छोड़ और सिर को पल्लू से ढाँपकर घबराती सी बोली, ''अरे! सुनो! देखो, जाओ न नीचे। बड़े भाईसाहब बुला रहे हैं शायद। कहीं तबीयत न खराब हो भाभी जी की।'' अचरज तो मुझे भी बहुत था। पत्नी की उत्तेजना और हड़बड़ी को मैं भली-भाँति समझ रहा था। वह तो बोल-बंदी से बहुत विचलित रहती थी। हर घड़ी मेल-मिलाप का बहाना, उपाय, दोनों खोजा करती थी। मैं भैया के बोलने के लहजे से अच्छी तरह परिचित था। उनकी आवाज़ में उत्सुकता अवश्य थी लेकिन सहजता थी। यह और भी जटिल पहेली थी कि फिर ऐसा क्या हो सकता है कि उन्होंने मुझे यों यकायक पुकारा।

खैर, मैं तत्परता से पलंग के पास रखी अपनी चप्पलें पैरों में डाल चटपट सीढ़ियाँ उतरता हुआ नीचे पहुँच गया। भैया को मुख्य प्रवेश द्वार अवरुद्ध किए, जैसे मेरे ही आने की प्रतीक्षा में अड़े हुए खड़े पाया। मेरे मन में कई भाव आए और गए। मेरी सब शंकाओं का समाधान करने के लिए उन्होंने अंदर बैठे अतिथियों की ओर इंगित करते हुए धीमे से कहा, ''गोपू और राजू आए हैं जागीरपुर से।''

''क्यों? अब क्या चाहिए उन्हें?'' मैंने भी सहज फुसफुसाहट में कहा।

''पता नहीं! मैंने अभी तक पूछा नहीं और उन्होंने अभी तक बोलने की हिम्मत नहीं की। बस चाय-नाश्ता कराया है।'' फिर जैसे उन्हें कुछ याद आया, ''खाना खा लिया तूने?''

''नहीं भैया! खा ही रहा था।'' कहते हुए मैंने अपनी उँगलियों के नाखूनों पर लगी सब्ज़ी की तरी की ओर देखा और हाथ कमर के पीछे कर लिए।

''अरे! तू खाना बीच में छोड़ आया है। जा, खा के आ जा। मैं तब तक उन्हें इधर-उधर की बातों में उलझाए रखता हूँ। जो भी बात है इनके मन में, मैं चाहता हूँ कि तेरे सामने ही हो।'' कहकर वह जाली के दरवाज़े से अपने ड्राइंग रूम की ओर बढ़े।

''ठीक है भैया'' कहकर मैं भी सीढ़ियाँ चढ़ अपनी थाली की ओर लपका। वृन्दा का दिल भी धड़कता होगा, उसे भी बता दूँ कि गोपू और राजू आए हैं। किस मकसद से? इसका पता नहीं। क्या मकसद हो सकता है इनके जैसे अहसान फरामोश, मौकापरस्त और मतलबी लोगों का? कहने को तो चचेरे भाई हैं। परंतु भाई कहते लज्जा आती है। वह दिन भुलाए नहीं भूलता जब पिताजी का पार्थिव शरीर घर में था और ये दोनों तकाजा कर रहे थे।

जाने उस दिन का सूरज किस रक्त में डूब कर निकला था कि हमारे परिवार के एकमात्र प्रकाशपुंज को लील गया। पिताजी सुबह घर से दफ़्तर के लिए निकले। शाम को छ: बजे तक घर लौट आने वाले पिताजी जब नियत समय पर लौट कर नहीं आए तो चिंता होनी आरंभ हुई। हम दोनों भाइयों ने कुछ समय माँ को तथा छोटी बबली को बहला कर रखा। दस बजते-बजते हमने उनके यार-दोस्त, रास्ते-गलियाँ, दफ़्तर-बाज़ार, पार्क-सिनेमा सब छान मारा। परंतु उनका कहीं पता न चला। मैं और भैया थाने में उनकी गुमशुदा रिपोर्ट लिखवा आए।

रात आँखों में गुजरी। माँ की आँखों से बहती फुहारें सूचक थीं किसी अनिष्ट की आशंका की। आँखों के नीचे के काले घेरे जीवन में आने वाले अँधेरे के डर से कुछ और गहरा गए थे। सुबह किसी पड़ोसी ने एक बार मुर्दाघर में भी छान-बीन कर आने की सलाह दी। सलाह सर्पदंश के समान कँटीली होते हुए भी हम विषपान को बाध्य थे। माँ को बिना बताए हमने यह तलाश भी की। धड़कते दिल से हमने कई पेटियाँ खींचकर देखीं। आठ-दस के बाद हम भाइयों ने एक-दूसरे को राहत की दृष्टि से देखा। तभी पुलिस इंस्पेक्टर एक शव को लाकर दराज में रखने लगे। दिल नहीं चाहता था उस पर नज़र डालना, मगर मस्तिष्क न माना और हमारी नज़र जैसे ही उस पर पड़ी कि हमारी चीख निकल गई।

न जाने कहाँ-कहाँ दस्तख़त कर, कितनी ही तरह की कागज़ी कार्रवाही कर हमें पिताजी का शव हासिल हुआ। शाम तक रीती आँखों के साथ हम पिताजी का शव लेकर घर में दाखिल हुए तो माँ पछाड़ खाकर गिर पड़ीं। उन्हें होश में लाएँ कि रिश्तेदारों को सूचना दें, समझ ने भी साथ छोड़ दिया था। भैया बीस बरस के और मैं अट्ठारह का। ऐसे में अड़ोसी-